नियमसार, गाथा के बाद कलश है न? ८६ गाथा के बाद कलश है। ११५ नहीं, उसके ऊपर। उसे अंक नहीं है। अमृतचन्द्राचार्य का है। ११५ के ऊपर।

इत्येवं चरणं पुराण-पुरुषैर्जुष्टं विशिष्टादरै-
रुत्सर्गा-दपवादतश्च विचरद्वह्नीः पृथग्भूमिकाः।
आक्रम्य क्रमतो निवृत्ति-मतुलां कृत्वा यतिः सर्वत-
श्चित्सामान्यविशेषभासिनि निजद्रव्ये करोतु स्थितिम्।।

आहाहा! यह नियमसार है।

[श्लोकार्थः—] इस प्रकार... जरा सूक्ष्म बात है, भाई! अनन्त-अनन्त काल के परिभ्रमण में आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द शुद्ध चैतन्य अमृत सागर है, उसकी कभी इसने दृष्टि नहीं की। इसके बिना यह सब बाहर में धमाल-पाप की। संसार का धन्धा आदि तो पूरे दिन पाप है। धर्म के नाम से आवे तो भी पूजा, भक्ति, व्रत, तप आदि वह भी शुभभाव है, वह कोई धर्म नहीं है। वह कहीं जन्म-मरण के अन्त का कारण नहीं है। आहाहा!

कहते हैं, **इस प्रकार विशिष्ट आदरवाले पुराण पुरुषों द्वारा सेवन किया गया,...** अर्थात् क्या कहते हैं? जो धर्मात्मा अन्तर शुद्ध चैतन्य ज्ञायक आनन्दस्वरूप प्रभु, उसकी अन्तर्दृष्टि करके जिसकी सेवना, स्वरूप में स्थिर होता है, वह निश्चय प्रतिक्रमण और निश्चय धर्म है। आहाहा! भगवान आत्मा... यह देह तो जड़ मिट्टी है। पैसा, इज्जत, कीर्ति जड़, वह तो जड़ है, पर है। अन्दर में पुण्य और पाप के भाव होते हैं, वह भी विकार, दोष और संसार है। उनसे रहित चैतन्य ज्ञायक, चैतन्यमूर्ति प्रभु की अन्तर्दृष्टि करके सेवना करना। वह

१. आदर = सावधानी; प्रयत्न; बहुमान।

विशिष्ट आदरवाले सावधानी पुरुष। प्रसन्न स्वरूप में प्रसन्न आनन्दवाले। आहाहा!

जिनका आदर राग और पर में अनादि से वर्तता है, वह तो संसार के भटकने के मार्ग परिभ्रमण के, नरक और निगोद के वे सब पन्थ हैं। वह दृष्टि छोड़कर, विशिष्ट पुरुषों ने। विशिष्ट कहा न? विशिष्ट आत्मार्थी पुरुषों ने, आदरवाले पुराण पुरुषों ने, अन्तरस्वरूप शुद्ध चैतन्य आनन्दघन का सावधानरूप से आदर किया। उनका **सेवन किया गया, उत्सर्ग और अपवाद द्वारा...** यह मार्ग बहुत सूक्ष्म है, प्रभु!

मुख्यमार्ग तो उत्सर्ग अर्थात्? ज्ञानानन्द, सहजानन्द प्रभु आत्मा में रमना, एकाग्रता वह उत्सर्ग अर्थात् मोक्ष का मूल मार्ग, वह धर्म मार्ग है। उसका भान होने पर भी उसके सेवन में एकाग्र नहीं रह सके तो अपवादिक मार्ग अर्थात् देव, शास्त्र, गुरु की भक्ति, पूजा, व्रत, तप का भाव, वह अपवादमार्ग है। वह मूलमार्ग नहीं है परन्तु भान हुआ होने पर भी अन्दर स्वरूप में जब नहीं रह सके, (तब ऐसा अपवादमार्ग होता है)। आहाहा!

चिदानन्दस्वरूप आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द आत्मा है। वह पुरुषोत्तम पुरुष मात्र ज्ञान और शान्ति और वीतरागता की मूर्ति प्रभु आत्मा है। उसकी दृष्टि करके अन्दर में रमना, वह तो उत्सर्गमार्ग, मोक्ष का वास्तविक मार्ग है। उसमें भान होकर नहीं रह सके, भान हुआ हो कि मैं शुद्धचैतन्य हूँ, उसकी दृष्टि हुई हो, उसे शान्ति का और आनन्द का जरा वेदन भी होता है परन्तु ध्यान में स्थिर नहीं रह सके तो उसे अपवादमार्ग लेना। अपवाद अर्थात् व्यवहारमार्ग। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, व्रत, तप के परिणाम उसे होते हैं, वह व्यवहार है, वह पुण्यबन्ध का कारण है। जन्म-मरण के अन्त का वह कारण नहीं है, परन्तु वह आये बिना रहता नहीं है। अरे रे! इसमें क्या समझना?

उत्सर्ग और अपवाद... उत्सर्ग तो यह सच्चिदानन्द प्रभु, (जो) दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के विकल्प राग हैं, उनसे भिन्न है। आहाहा! उसे आदरकर, सावधान होकर, उसमें प्रसन्नता करके। आहाहा! है अन्दर? सावधानी करके, अन्तर प्रयत्न में शुद्ध चैतन्य में प्रयत्न करना, वह मूलमार्ग है। मूल धर्ममार्ग वह है परन्तु ऐसी दृष्टि और ज्ञान हुआ होने पर भी, अन्दर में जरा स्थिरता भी होने पर भी, ध्यान में अन्दर लीन न हो सके तो उसे उस आत्मा के लक्ष्य और दृष्टिपूर्वक की दशा में उसे अपवादमार्ग अर्थात् पूजा, भक्ति, व्रत, तप के विकल्प का राग आता है, उसे यहाँ अपवादमार्ग कहा जाता है। अरे रे! ऐसी बातें आवे।

कहीं बहियों में होती नहीं, व्यापार में होती नहीं। अकेला पाप का धन्धा पूरे दिन। सवेरे से शाम यह किया... यह किया... यह किया। अकेला पाप। धर्म तो नहीं, परन्तु पुण्य भी नहीं। अकेला पाप (करके) दुर्गति में जाने के लक्षण। आहाहा!

मुमुक्षु : अभी सब मौज-मजा मना रहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मौज अर्थात् यह दुःखी है। मौज-मजा किसका? राग के द्वेष के परिणाम में खड़ा है, वह दुःखी है। उसे सुखी कौन कहे? अरबोंपति प्राणी दुःखी है। क्योंकि उसकी दृष्टि पर के ऊपर जाती है और यह ठीक है, इसलिए उसे राग होता है। यह राग, वह दुःख है, आकुलता है; शान्ति की जलहल ज्योति वहाँ जल जाती है। आहाहा! ऐसा स्वरूप बहुत कठिन, बापू!

भगवान आत्मा की शक्ति की विशेषता, विस्मयता और विशिष्टता वह विशिष्ट चीज़ है। उसके ऊपर का आश्रय, विस्मयता छोड़कर बाहर की कोई भी चीज़—इन्द्र का इन्द्रासन हो, या अरबोंपति पैसा हो, आत्मा के अतिरिक्त दूसरी चीज़ की अधिकता, विशिष्टता, उत्साह, वीर्य में राग का रंग चढ़ जाए, वह प्राणी दुःखी और पापी है।

मुमुक्षु : पैसा न होवे, वह दुःखी और पैसा होवे, वह सुखी।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा मिलता है, वह पुण्य के कारण, परन्तु पैसावाला है, वह पापी है। यह क्या कहा? पैसे मिलें, यह धूल दो-पाँच-पचास लाख, करोड़-दो करोड़, पाँच करोड़, वह मिले, वह पूर्व के पुण्य के कारण (मिलती है)। परन्तु चीज़ है, वह परिग्रह है, वह पाप है। आहाहा! दुनिया जिसे पुण्यशाली कहे, पूर्व के पुण्य के कारण मिला, इसलिए (ऐसा कहे)। ज्ञानी उसे पापी कहते हैं क्योंकि पैसा, इज्जत, कीर्ति, दो-पाँच करोड़, पचास करोड़, दस करोड़, अरब करोड़। पैसेवाले भी बहुत मिले है न!

अपना भाई भी मर गया न? शान्तिलाल खुशाल। दो अरब चालीस करोड़। शान्तिलाल खुशाल। वीरचन्दभाई! नाम सुना है? गोवा में अपना दशाश्रीमाली बनिया था। उसका बहनोई यहाँ आता है। पोपटभाई। क्या पोपटभाई नाम है? पोपटभाई लीबड़ी के। उनका बहनोई, यहाँ आता है। उनकी लड़की बालब्रह्मचारी है। उनका साला शान्तिलाल खुशाल, गोवा। दो सौ चालीस करोड़, दो अरब चालीस करोड़। अभी लड़के हैं। वह तो डेढ़-पौने दो वर्ष पहले मर गया। ६१ वर्ष की उम्र थी। स्त्री को हेमरेज हुआ, यहाँ मुम्बई

दवा कराने आये थे। वहाँ गोवा में तो बड़े साठ लाख के मकान हैं। एक चालीस लाख का, दस-दस लाख के दो। बड़ा गृहस्थ दशाश्रीमाली बनिया था। पाणसणा का था। उसकी स्त्री को कुछ हुआ, इसलिए बम्बई आया था। पौने दो वर्ष हुए। उसमें एकदम दो-चार दिन हुए होंगे। रात्रि में कहे, मुझे दु:खता है। डॉक्टर को बुलाओ, ऐसा कहा। डॉक्टर आता है, वहाँ भाईसाहब रवाना। ढोर आदि में जानेवाला। बहुत से तो पशु में जानेवाले हैं। पाप करते नहीं। माँस और अण्डा, यह न (खाते) हों, पुण्य भी न हो, इसलिए ऐसे पाप के परिणाम में बहुत से तो मरकर वक्रता के कारण पशु आड़ा तिर्यंच होनेवाले हैं। ये क्रोध और मान-माया जो कषायभाव है, वह वक्रता का भाव है। उस वक्रता के कारण मरकर आड़ा शरीर होनेवाला है। ऐसे मनुष्य खड़े हैं, यह मरकर आड़े होनेवाले हैं। गिलहरी, बन्दर, कुत्ता। आहाहा! इतनी बात भी न जँचे, बापू! क्या हो? प्रभु का तो यह पुकार है।

तिर्यंच कैसे होता है? तिर्यंच-तिरछा। यह गायें, भैंस ऐसे आड़े होते हैं न? आड़ा शरीर। गाय, भैंस, गिलहरी, नेवला, मूस (बड़ा चूहा) यह सब तिर्यंच ढोर आड़े हैं। ये आड़े क्यों हुए हैं? कि पूर्व में वक्रता बहुत की है। वक्रता अर्थात्? क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, तृष्णा आदि सेवन किये, यह स्वरूप से वक्रता की है। इस वक्रता के कारण उनका आत्मा तो वक्र हुआ, परन्तु उसके फल में शरीर वक्र हो गया। ऐसा बाँका-आड़ा शरीर मिला। आहाहा! ऐसा!

जिसे दुनिया सुखी कहे, उसे परमात्मा पापी कहते हैं। अब ऐसा कहाँ मिलान खाये? वह परिग्रह है न? पैसा है, वह परिग्रह है और चौबीस प्रकार का परिग्रह है। चौदह अन्तरंग परिग्रह—मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ (और नौ नोकषाय) तथा दस प्रकार का बाह्य परिग्रह—क्षेत्र, वस्तु, पैसा-लक्ष्मी इत्यादि। ये सब बाह्य परिग्रह हैं, वह पाप है। मिला है पुण्य से परन्तु अब अभी मिला है, वह पाप है। आहाहा! और उस पाप में पड़े हुए जीव तिर्यंच के-पशु के अवतार में जानेवाले हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार तेरी सम्हाल कर न! सावधान किया है न? आदर करनेयोग्य कहा न? यह आत्मा अन्दर आनन्दकन्द है, प्रभु! यह पुण्य और पाप के विकल्प के राग से भिन्न है। यह पूर्णानन्द से भरपूर है, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। आहाहा! इससे कोई ऊँची चीज़ जगत में है नहीं। यह समयसार के अन्तिम कलश में

आया है न ? भाई ! समयसार से उत्कृष्ट कोई नहीं अनुभव में। वस्तु तो वस्तु है। महाप्रभु है। आहाहा ! जिसे केवलज्ञानी परमात्मा भी एक समय की पर्यायवाला आत्मा नहीं मानते। पूरा पूर्णानन्द का नाथ, सच्चिदानन्द प्रभु सत् शाश्वत् ज्ञानानन्द के स्वभाव से भरपूर भण्डार, ऐसे भगवान की जिसे सावधानी है, सम्हाल है, प्रसन्नता है... आहाहा ! बहुमान है, उसके प्रति का प्रयत्न है... आहाहा ! ऐसे जीव आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और सेवना करनेवाले हैं। समझ में आया ? आहाहा !

एक स्तवन में-स्तुति में आता है। चार सज्झायमाला है। यहाँ तो पहले छोटी उम्र से यही धन्धा था न ! दुकान में पाँच वर्ष व्यापार किया, परन्तु दुकान में यह पढ़ता था। सज्झायमाला चार है। एक-एक सज्झायमाला में दो सौ-ढाई सौ सज्झाय है। चार सज्झायमाला है। यह तो तब दुकान पर पढ़ी थी। बीस वर्ष की उम्र। अभी तो नब्बे वर्ष हुए। सत्तर वर्ष पहले की बात है। पढ़ा था। उसमें एक गायन-सज्झाय ऐसी थी। 'होंशीडा मत होंश न कीजे' ए... होंशीडा ! पर में उत्साह नहीं करना, नाथ ! मरकर दुर्गति में जाएगा, भाई ! आहाहा ! दुकान पर ये पढ़ते थे। पिताजी की-घर की दुकान थी। अभी दुकान है तो न, बड़ी दुकान है। अभी चालीस लाख रुपये हैं। दुकान की चार लाख की आमदनी है। पालेज। भरुच और बड़ोदरा के बीच पालेज है। सब पाप का धन्धा। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि हे सम्हालवाले ! किसकी सम्हाल ? इस आत्मा की। है न ? **इस प्रकार विशिष्ट आदरवाले पुराण पुरुषों द्वारा...** इसका अर्थ यह है। प्रभु ! तेरी प्रभुता का अन्दर पार नहीं है। प्रभु ! तूने तेरी प्रभुता को परखा नहीं और पामर चीज़ की अन्दर कीमत और बहुमान, विशेषता और विस्मयता करके चौरासी के अवतार में भटक मरा है। आहाहा ! यहाँ प्रभु कहते हैं कि इस प्रकार खास **आदरवाले पुराण पुरुषों...** अनादि परमात्मास्वरूप आत्मा, ऐसे पुराण पुरुषों, उसे आनन्द में स्वरूप की सावधानी से... आहाहा ! **सेवन किया गया,...** आत्मा की शान्ति और पुण्य-पाप के राग से रहित भगवान आत्मा के आनन्द को सेवन किया गया अर्थात् जो अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में आया हुआ। आहाहा !

यह जो इन्द्रियों के विषय का स्वाद है, वह तो जहर का प्याला है। जहर का प्याला, विकार का प्याला - जहर का प्याला है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है, उसकी अन्तर में रुचिपूर्वक की रमणता (करता है), वह अमृत का प्याला पीता है।

आहाहा! वह धर्म है। अरे! ऐसा धर्म, भाई! किस प्रकार का? आहाहा! ऐसे जीवों को खास... कहा न? विशेषण खास। **आदरवाले पुराण पुरुषों....** अन्तर की चीज़ पूर्णानन्द का नाथ आत्मा, अतीन्द्रिय शान्ति का सागर, अतीन्द्रिय ज्ञान का समुद्र... आहाहा! जिसके गुण की संख्या का पार नहीं, ऐसे अनन्त गुण का समुद्र, प्रभु! और एक-एक गुण की शक्ति के सामर्थ्य का पार नहीं। ऐसी एक-एक शक्ति में अनन्त सामर्थ्य और ऐसी अनन्त शक्तियों का सामर्थ्य, ऐसे आत्मा का आदर करके, सम्हाल करके, प्रसन्नता करके... आहाहा! **सेवन किया गया,...** ऐसे आत्मा का जिसने सेवन किया है, वह उत्सर्गमार्ग है। मोक्ष का मूल मार्ग यह है। उत्सर्ग कहा। है न? **सेवन किया गया, उत्सर्ग...** सूक्ष्म बात है, भाई! अपने आप पढ़े तो कुछ पकड़ में आये ऐसा नहीं है।

पूरे दिन पाप की बहियाँ पढ़ा करे, उसमें यह क्या समझे कि इसमें क्या लिखा है? आहाहा! अरे रे! जिन्दगी गवाँकर चले जाते हैं। कहा न? वह पाँच मिनिट में मर गया। दो अरब चालीस करोड़। और चालीस लाख का बँगला और दस-दस लाख के दो साठ लाख का बँगला है। अभी मुम्बई हम गये थे, तब लड़का आया था। लड़का कहता है- महाराज! मेरे पिता को दर्शन करने का बहुत भाव था। बातें तो करे बेचारे। मर गया। आहाहा! यह सब पशु में अवतरित होनेवाले हैं। नरक में तो नहीं जायें, माँस, शराब आदि का खुराक तो नहीं होता। धर्म का तो भान नहीं होता। दो-चार घण्टे सत्समागम, सच्चा समागम मिलकर वाँचन, श्रवण, मनन करे तो उसे पुण्य भी हो। वह भी नहीं होता। आधा घण्टा-घण्टा मिले तो सुनने जाए। वह भी ऐसा सुनने को मिले (कि) व्रत करो, तप करो, पूजा करो, भक्ति करो धर्म होगा। वह भी मिथ्यात्व के सेवन में जाए। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि अन्तर के आदरवाले पुरुष... आहाहा! पुण्य की क्रिया के परिणाम में भी जिनकी सावधानी नहीं। पुण्य की क्रिया में भी जिनकी प्रसन्नता और उत्साह नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

यह तो पहले से हमारे पूर्व के संस्कार थे, इसलिए १८ वर्ष से यह सब होता है। १८ वर्ष की उम्र से। ७२ वर्ष हुए। (अभी) शरीर को ९० हुए हैं। इस वैशाख शुक्ल द्वितीया को ९१ वाँ लगेगा। ७२ वर्ष पहले मैं तो सबको कहता था। दुकानदार को कहता था। यह क्या करते हो पूरे दिन? दुकान तो मैं भी चलाता था, परन्तु एक ओर शास्त्र पढ़ूँ, गाँव में

साधु आवे तो दुकान छोड़ दूँ और वे तो रात्रि को आठ बजे जाए। साधु आये हों तो आठ बजे जाए। पूरे दिन दुकान और धन्धा। पुण्य भी नहीं होता। धर्म तो नहीं होता परन्तु पुण्य का भी ठिकाना नहीं होता। आहाहा!

हमारी फुई (बुआ) का पुत्र भाई भागीदार था। कुँवरजीभाई थे। लड़के अच्छे हैं बेचारे। मरकर ढ़ोर-तिर्यंच होगा, बापू! याद रखना। (संवत्) १९६६ के वर्ष की बात है। (संवत्) १९६६ का वर्ष कितने वर्ष हुए? ७०। तब कहा था, भाई! तुम पूरे दिन यह क्या करते हो? मर के पशु में जाने के तुम्हारे लक्षण हैं, कहा। याद रखना। भले तुझे वर्ष की दो लाख की आमदनी है। मर गया तो दो लाख की आमदनी, दस लाख की आमदनी (थी) अभी तो चालीस लाख है। लड़के तो वाँचन करें, भक्ति-पूजा-वाँचन करें, पश्चात् दुकान में जाएँ। उसको तो एक ही बात। अरे रे! क्या होगा? बापू! कहा, भाई!

यहाँ यह कहते हैं कि जिसे आत्मा का आदर नहीं, उसकी तो बात हम करते नहीं। वह तो भटकनेवाला है। जिसे आत्मा का आदर है... आहाहा! जिसे दया, दान और व्रत के परिणाम आवें, तथापि उसका आदर नहीं। क्योंकि राग है, बन्ध का कारण है। आहाहा! ऐसी बातें। वह **आदरवाले पुराण पुरुषों द्वारा सेवन किया गया, उत्सर्ग...** आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द को जिसने सेवन किया है। आहाहा! उसमें जब नहीं रह सकता, तब **अपवाद द्वारा...** अपवाद अर्थात् तब उसे पुण्य के परिणाम आते हैं। दृष्टि में भान है कि मैं ज्ञायक हूँ, चैतन्य हूँ, पूर्णानन्दस्वरूप हूँ। ऐसी दृष्टि होने पर भी, स्वरूप में स्थिर नहीं रह सकता और शुद्धदशा है, तब उसे ऐसा दया का, दान का, पूजा का, भक्ति का ऐसा शुभभाव आता है, वह अपवाद है।

आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति की सेवा, वह उत्सर्ग और मूलमार्ग है। उस मार्ग में अन्दर स्थिर नहीं रह सके और भान होने पर भी, उसे अपवाद अर्थात् बीच में शुभभाव आता है, जो पुण्यबन्ध का कारण है। उसे यहाँ अपवादमार्ग कहने में आता है। आहाहा! ऐसी बातें जिन्दगी में सुनी भी नहीं होगी। एक तो पूरे दिन धन्धा और निवृत्त होवे तो उसे जोड़ दे व्रत, तप, भक्ति और पूजा में। दोनों पाप है। आहाहा! 'पुण्य को पुण्य तो सब कोई कहे, परन्तु अनुभवी जन पुण्य को पाप कहे।' (योगसार, दोहा-७१) आहाहा! कठिन काम, प्रभु!

अपवाद द्वारा अनेक पृथक्-पृथक् भूमिकाओं में... क्या कहते हैं यह? अन्तरस्वरूप

अतीन्द्रिय आनन्द की, इसकी भी सेवना है और सेवना में रहने पर भी स्थिर नहीं हो सकता, तब अपवादमार्ग में अर्थात् व्रत, तप, भक्ति, पूजा के भाव में आता है। ऐसी **अनेक पृथक्-पृथक् भूमिका...** सूक्ष्म-सूक्ष्म बात है, प्रभु! **पृथक्-पृथक् भूमिका... उत्सर्ग और अपवाद...** उत्सर्ग और अपवाद। अपवाद राग आवे और छोड़कर स्वरूप में स्थिर ध्यान में आ जाए। उसमें न रह सके, तब फिर ऐसा शुभभाव आवे। समझ में आया? आहाहा! यह बहियाँ नहीं कि पढ़कर अपने आप समझ जाए। पाप की बहियाँ सब भरी है। आहाहा!

उत्सर्ग और अपवाद द्वारा अनेक पृथक्-पृथक् भूमिकाओं में.... यह क्यों कहा? कि आनन्दस्वरूप प्रभु का अनुभव सम्यग्दर्शन है और अन्तर में आनन्द का सेवन है, परन्तु उसमें स्थिर नहीं रह सकता, तब उसे अपवादमार्ग ऐसा शुभभाव व्रत, तप, भक्ति, पूजा, दान का भाव आता है। वह पृथक्-पृथक् भूमिका। फिर स्वरूप में स्थिर हो, तब वह भाव नहीं होता; फिर स्थिर नहीं हो सके, तब वह भाव होता है—ऐसी पृथक्-पृथक् दशाएँ आती हैं। अरे! अब ऐसा मार्ग। समझ में आया?

ऐसी **अनेक पृथक्-पृथक् भूमिकाओं में व्याप्त जो चरण...** है न? **(-चारित्र)...** स्वरूप है भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, जिसमें दया, दान, पूजा, भक्ति के विकल्प का भी अवकाश नहीं है। वह तो निर्मलानन्द प्रभु है। ऐसे भगवन्त की सेवा, वह उत्सर्गमार्ग है परन्तु जब उसमें नहीं रह सकता और भान होने पर भी, राग की परिणति शुभ में आती है। दया, भक्ति, पूजा, व्रत आदि वाँचन, श्रवण। वाँचन, श्रवण, वह सब शुभराग है। आहाहा! उन **पृथक्-पृथक् भूमिकाओं में व्याप्त जो चरण (-चारित्र) उसे यति प्राप्त करके,...** आहाहा! मुनि की उत्कृष्ट बात है न? यति अर्थात् स्वरूप का यत्न जिसने किया है। यह यति अर्थात् वे जोगी, वे यति नहीं। जिसे आनन्द के नाथ के सागर का यत्न किया है, जिसने पुण्य और पाप से जीव को अन्दर में बचाया है। आहाहा! उसे यहाँ यति कहने में आता है। उसने स्वरूप का जतन, यत्न किया है। आहाहा! ऐसे यति। है?

(उसे) **यति प्राप्त करके,...** अन्तर के आनन्दस्वरूप को प्राप्त करके, उसमें रह न सके तो आनन्द की दृष्टि तो है और शुभभाव में आवे, फिर वहाँ से हटकर अन्तर में आवे, फिर वहाँ स्थिर न हो सके तो राग में आवे ऐसी बहुत **पृथक्-पृथक् भूमिकाओं में व्याप्त जो चरण (-चारित्र) उसे यति प्राप्त करके, क्रमशः...** क्रमशः। **अतुल निवृत्ति करके,...**

आहाहा! क्रम से करके अतुल निवृत्ति। विकल्प से अत्यन्त रहित निर्विकल्प में स्थिर हो जाना, तब उसे मोक्ष होता है। ऐसा मार्ग है। सुनना कठिन पड़े। सम्प्रदाय में यह बात चलती नहीं। ४५ वर्ष देखे हैं न। ४५ यहाँ हुए। ४५ वर्ष उसमें थे। ९० हुए। आहाहा! यह ऐसा करो। हमारे हीराजी महाराज (कहते थे), दया करो, व्रत करो, तप करो, यह किया करे बेचारा।

यहाँ कहते हैं कि इस प्रकार अतीन्द्रिय आनन्द के सागर के सेवन में रहकर अन्तर में ध्यान में स्थिर नहीं रह सके तो शुभराग में आवे, फिर वहाँ से हटकर स्थिर में आवे, फिर वहाँ स्थिर न रह सके तो राग में आवे। ऐसे पृथक्-पृथक् दशाओं को सेवन करके। आहाहा! है? ऐसा चारित्र। **क्रमशः अतुल निवृत्ति करके,...** अतुल निवृत्ति। अन्त में अन्तर अकेला आत्मा आनन्द का सागर, जहाँ विकल्प का अवकाश नहीं। ऐसा **अतुल निवृत्ति करके, चैतन्य सामान्य...** दर्शन, दृष्टापना भगवानस्वरूप आत्मा है। दृष्टा-दर्शनस्वरूप आत्मा और ज्ञानस्वरूप आत्मा विशेष। **चैतन्य सामान्य...** यह दर्शन। **और चैतन्यविशेषरूप...** यह ज्ञान। वह **जिसका प्रकाश है,...** वह तो दृष्टा और ज्ञाता, उसका प्रकाश चैतन्य सूर्य प्रभु है। चैतन्य चन्द्र में अन्दर शीतल आनन्द भरा हुआ है। आहाहा! उसे **अतुल निवृत्ति करके,... जिसका प्रकाश है, ऐसे निजद्रव्य में सर्वतः स्थिति करो।** ओहोहो! **निजद्रव्य में।** परमात्मा में भी नहीं। परमात्मा परद्रव्य है। परद्रव्य में भक्ति आदि हो, वह राग है; वह कहीं धर्म नहीं। आहाहा! कहो, यशपालजी! ऐसा मार्ग है। जगत को कहाँ निवृत्ति है? आहाहा! निज धन्धा क्या है, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा! परधन्धा में विचिक्षण, परधन्धा में चतुर, वह धर्म में मूर्ख है। धर्म में चतुर, वह संसार का मूर्ख। संसार में उसकी चतुराई काम नहीं आती। आहाहा! ऐसा है, प्रभु!

उस **निजद्रव्य में...** निजद्रव्य अर्थात् अपना स्वरूप। अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान में **सर्वतः...** सर्व प्रकार से बिल्कुल विकल्प छोड़कर **स्थिति करो।** इस मनुष्यपने में करने का कर्तव्य यह है। यदि धर्म और मुक्ति करनी हो तो; बाकी तो अनन्त काल से भटककर मरता है। आहाहा! एक कलश में कितना भरा है! देखा? आहाहा! यह प्रवचनसार का श्लोक है।

श्लोक-११५

और (इस ८६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

(मालिनी)

विषयसुखविरक्ताः शुद्धतत्त्वानुरक्ताः,
तपसि निरतचित्ता शास्त्रसङ्घातमत्ताः।
गुणमणि-गणयुक्ताः सर्वसङ्कल्पमुक्ताः,
कथ-ममृतवधूटी-वल्लभा न स्युरेते ।।११५।।

(हरिगीतिका)

जो विषय-सुख से विमुख हैं शुद्धात्म में अनुरक्त हैं।
तपलीन जिनका चित्त है श्रुत-पुञ्ज में जो मत्त है॥
गुण-मणिगणों से युक्त, सब संकल्प से जो मुक्त हैं।
वे मुक्तिरूपी सुन्दरी के क्यों नहीं वल्लभ बनें॥११५॥

[श्लोकार्थः] जो विषयसुख से विरक्त हैं, शुद्ध तत्त्व में अनुरक्त हैं, तप में लीन जिनका चित्त है, शास्त्रसमूह में जो [१]मत्त हैं, गुणरूपी मणियों के समुदाय से युक्त हैं और सर्व संकल्पों से मुक्त हैं, वे मुक्तिसुन्दरी के वल्लभ क्यों न होंगे ? (अवश्य ही होंगे)॥११५॥

श्लोक-११५ पर प्रवचन

और (इस ८६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):— अब ११५वाँ श्लोक आया। अब श्लोक।

विषयसुखविरक्ताः शुद्धतत्त्वानुरक्ताः,
तपसि निरतचित्ता शास्त्रसङ्घातमत्ताः।

१. मत्त = मस्त; पागल; अति प्रीतिवन्त; अति आनन्दित।

गुणमणि-गणयुक्ताः सर्वसङ्कल्पमुक्ताः,
कथ-ममृतवधूटी-वल्लभा न स्युरेते ।।११५।।

आहाहा! भाई! यह तो सर्वज्ञ परमात्मा जिनेश्वरदेव वीतराग परमात्मा सीमन्धरस्वामी भगवान विराजते हैं, वहाँ से यह वाणी आयी है। आहाहा! यह समझना कठिन पड़े, ऐसी है। आहाहा!

श्लोकार्थः जो... व्याख्या **विषयसुख से विरक्त हैं,...** बाह्य के ओर के झुकाव में जो सुख माने, वह कल्पना है, धर्मी उससे विरक्त है। आहाहा! पैसे में, इज्जत में, कीर्ति में, सुन्दर शरीर में, आत्मा के अतिरिक्त किसी भी दूसरी चीज़ में कुछ भी विशेषता लगे, कुछ अधिकता लगे... आहाहा! कुछ उसमें विस्मयता की अचिन्त्यता लगे, वह सब मिथ्यात्वभाव है। मिथ्यादृष्टि का मिथ्यात्वभाव है।

उस **विषयसुख से विरक्त हैं,...** धर्मी तो विषय के सुख, बाहर के विस्मय से विरक्त है। आहाहा! अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान में जिसकी रक्तता है, लीनता है और बाहर के विषयसुख से विरक्त है। यहाँ रक्त है, वहाँ से विरक्त है। अज्ञानी स्वभाव से विरक्त है, तब विभाव में रक्त है। आहाहा! अनादि काल से अपना स्वभाव शुद्ध आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर, उससे विरक्त है और राग की क्रिया में अन्दर में रक्त है। वह संसार में भटकने के लक्षण हैं। आहाहा!

यहाँ **जो विषयसुख से विरक्त हैं,...** यहाँ कहाँ सुख है? धूल में? सुख तो यहाँ प्रभु में है। अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, उसमें सुख है। आहाहा! इन इन्द्रियों के विषय में, भोग में, इज्जत में, कीर्ति में, पैसे में, शरीर की सुन्दरता में, मकान आदि की विशेष की विस्मयता में जो सुख मानता है, वह मूढ़ जीव मिथ्यादृष्टि अनन्त जन्म-मरण के गर्भ को करने के कारणरूप भाव का सेवन करता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **जो विषयसुख से विरक्त हैं,...** भारी कठिन काम। **शुद्ध तत्त्व में अनुरक्त हैं,...** शब्द सब सरीखे हैं। देखा? **विषयसुखविरक्ताः शुद्धतत्त्वानुरक्ताः,..** सब मेलवाले शब्द हैं। **विषयसुख से विरक्त हैं,...** आत्मा के आनन्द के स्वभाव के अतिरिक्त किसी भी जीव में जिसे कुछ रति, प्रसन्नता उठती ही नहीं। **शुद्ध तत्त्व में अनुरक्त हैं,...** वहाँ से विरक्त है तो यहाँ से अनुरक्त है। अतीन्द्रिय आनन्द के सागर प्रभु में अनुसरण कर

रक्त है। आहाहा! ऐसा उपदेश कैसा परन्तु यह! मुश्किल-मुश्किल से पकड़ में आये, ऐसा उपदेश। वह तो (क्रियाकाण्ड का उपदेश तो) सीधा-सट्ट था।

मुमुक्षु : इसे पकड़ में आवे ऐसा...

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग ही यह है न। अनन्त काल में अभ्यास में आया नहीं, इसलिए इसे कठिन लगता है। सत् प्रभु अन्दर (विराजता है)। यह (शरीरादि) तो नाशवान चीज़-धूल है, यह तो मिट्टी है, यह तो हड्डियाँ हैं। पैसा तो कहीं धूल है। पैसा तो इसकी पर्याय में भी नहीं। क्या कहा यह? इस शरीर के रजकण जो धूल हैं, वे तो आत्मा की पर्याय जो अवस्था, उसमें भी वे नहीं हैं। वह तो पर्याय से भिन्न चीज़ है। आत्मा जो द्रव्य-गुण त्रिकाली ध्रुव है, उसमें तो वर्तमान जो पर्याय / अवस्था है, वह भी नहीं है। अब इसकी जो पर्याय है, उसमें यह शरीर और कर्म इसकी पर्याय में नहीं है। इसकी पर्याय में अनादि से अज्ञान और राग-द्वेष तथा विकार है। इसमें होवे तो अज्ञानी को पर्याय में राग-द्वेष और अज्ञान है। द्रव्य-गुण तो शुद्ध है। इसकी पर्याय में पैसा नहीं, कर्म नहीं, शरीर नहीं। कर्म पर्याय में नहीं। कर्म तो भिन्न चीज़ है। शरीर भी भिन्न चीज़ है। मकान, पैसा, इज्जत, कीर्ति तो कहीं धूल बाहर में रह गये। इसकी पर्याय में भी नहीं, वे तो बाहर हैं। आहाहा! उनसे तो विरक्त है परन्तु पर्याय में पर में सुख मानना, उससे भी विरक्त है। ऐसी बातें हैं, भाई! सोनगढ़ की बातें करे, फिर निश्चय की बातें। ऐसा है और वैसा है। अरे! बापू! करो। मार्ग तो है वह है। आहाहा!

शुद्ध तत्त्व में अनुरक्त हैं, तप में लीन जिनका चित्त है,... तप अर्थात् यह अपवास आदि नहीं। शुद्ध चैतन्य आनन्द का घन, उसकी उत्कृष्ट निर्मलता का नाम तप है। जैसे सोने को गेरु लगाने से सोना ओपता और शोभता है; वैसे भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित चारित्रसहित स्वरूप की रमणता में शुद्धता से ओपता और शोभता है, उसे तप कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? **तप में लीन जिनका चित्त है,...** आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु, उसमें जिसकी लीनता है, उसका नाम तप कहा जाता है। तपयन्ते इति तपः जिसमें से अशुद्धता टलती है और अतीन्द्रिय आनन्द जागृत होता है, उसे यहाँ परमात्मा तप कहते हैं। बाकी सब लंघन है।

शास्त्रसमूह में जो मत्त हैं,... आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने कहे हुए

जो शास्त्र, उनमें जो मस्त हैं, पागल हैं। दुनिया को पागल जैसे लगें। दुनिया पागल है, इसलिए शास्त्रज्ञानवाले को पागल जैसा लगता है। आहाहा! पागल हैं।

यह पहले वहाँ पालेज में हमारी दुकान में एक सगे-सम्बन्धी थे। वे वैष्णव थे। फिर यह सत् क्या कहलाता है वह? सत्यनारायण की कथा, नहीं? सत्यनारायण की कथा करते। वैष्णव थे। फिर वहाँ अन्दर गाते, 'जगतड़ा कहे छे रे भगतडा घेला छे, पण घेला न जाणसो रे, प्रभु ने त्यां पहला छे।' यह तब (संवत्) १९६४-६५ की बात है। संवत् ६४ और ६५। वे वैष्णव थे। घोघा के। लाती का बड़ा व्यापार था। लाती थी। अब उनके लड़के तो भरूच में रहते हैं परन्तु सब वहाँ सगे-सम्बन्धियों में सम्बन्ध है न? वहाँ सत्यनारायण की कथा होवे तो जाना तो पड़े। वहाँ गाते थे। 'जगतड़ा रे कहे छे रे भगतडा घेला छे, पण घेला न जाणसो रे, प्रभु ने त्यां पहला छे।' आहाहा! वह कुछ दूसरी भाषा थी।

मुमुक्षु : काला।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'जगतड़ा रे कहे छे रे भगतडा काला छे, पण काला न जाणसो रे, प्रभु ने त्यां ई वहाला छे।' तब ऐसा गाते थे। यह तो ७२ वर्ष पहले की बातें हैं।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, ज्ञानी **शास्त्रसमूह में...** पागल हैं। है? मत्त है, मत्त है। शास्त्र के ज्ञान में मस्त हैं। दुनिया को पागल जैसा, मत्त जैसे लगते हैं। क्या ऐसी बातें करते हैं? यह जो पूरे दिन बातें चलती है, उसमें कोई ऐसी बात ही नहीं आती। नयी-नयी बातें। ऐसा करे, वैसा करे, अमुक। आहाहा! **शास्त्रसमूह में...** सिद्धान्त सर्वज्ञ वीतराग के शास्त्र में, उनके ज्ञान के समूह में जो मत्त हैं। नीचे (फोटनोट में अर्थ) है न? **मस्त...** है, **पागल...** है **अति प्रीतिवन्त...** है। अन्तर सम्यग्ज्ञान में अतिशय प्रतीतिवन्त धर्मात्मा हैं। आहाहा! यह लौकिक ज्ञान यह वकालात, डॉक्टर और यह सब पागल ज्ञान है, पागल का ज्ञान है। आहाहा! वह पागल है। अन्तरस्वरूप के ज्ञान में वीतराग ने कहा हुआ जो शास्त्रज्ञान, उसमें धर्मात्मा पागल हैं, मस्त हैं। आहाहा! जिनकी मस्ती जगत को पागल जैसी लगे, ऐसा है। आहाहा! और दुनिया के पागल उस धर्मी को पागल जैसा, पागल जैसे लगते हैं। परमात्मप्रकाश में है। परमात्मप्रकाश शास्त्र है न? उसमें यह लेख है। पागलों को धर्मात्मा पागल जैसे लगते हैं। धर्मात्मा को दुनिया पागल जैसी लगती है। आहाहा!

मुमुक्षु : दो में से सच्चा कौन?

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्चा तो जो यह सच्चा है, वह सच्चा है। आत्मा के ज्ञान में शास्त्रसमूह में मत्त हैं, वे सच्चे हैं। दुनिया के ज्ञान में प्रवीण हैं, वे उन्मत्त और पागल हैं। दुनिया की बातें करने बैठे तो मानो बड़े देव के पुत्र उतरे। पाँच-पच्चीस लोग बैठे हों और बातें करते हैं ऐसा है, वैसा है, अमुक है, अमुक है। अलक-मलक की लगावे। अगम्य गम्य की नहीं परन्तु अलक-मलक की। आहाहा!

धर्मात्मा... आहाहा! **जो विषयसुख से विरक्त हैं,...** विषयसुख में रुचि उड़ गयी है। आहाहा! एक म्यान में दो तलवारें नहीं रहतीं। पर में सुखबुद्धि रहे और आत्मा में सुखबुद्धि रहे, ऐसे दो नहीं रह सकते। आहाहा! जिसे पर में सुखबुद्धि (नहीं है), इन्द्र के इन्द्रासन हों, परन्तु समकिती धर्मी को सुखबुद्धि उड़ गयी है और अपने में **अनुरक्त हैं,...** शुद्धतत्त्व जो आनन्द का नाथ प्रभु, उसमें अनुरक्त है। आहाहा! कलश भी आये हैं न! अमृत से भरपूर कलश हैं। जो अन्तर में लीन हैं, शास्त्रसमूह में जो पागल-मत्त हो गये हैं। **गुणरूपी मणियों के समुदाय से युक्त हैं...** लो, यह दुनिया मणि और रत्न से युक्त है। आहाहा! सब पागल जैसे लगें। मुम्बई, तुम्हारा सेठ मिला था या नहीं? चिमनभाई नौकर थे। वैष्णव है। पचास करोड़ रुपये हैं। पचास करोड़। नाम क्या?

मुमुक्षु : रामदास कीलाचन्द देवचन्द।

पूज्य गुरुदेवश्री : आया था। दर्शन करने आवे न! पचास करोड़। वैष्णव। महिलाएँ सब श्वेताम्बर जैन। महिलाएँ सब श्वेताम्बर जैन और आदमी सब वैष्णव। इसलिए दर्शन करने आये थे। आये थे। एक हजार रुपये रखे थे, नारियल रखा था। महिलाएँ श्वेताम्बर जैन हैं न? महाराज! घर में चरण करेंगे? वे तो वैष्णव। उन्हें प्रेम से बताता था। वैष्णव तो ईश्वरकर्ता मानते हैं न? मैंने कहा, परन्तु ईश्वरकर्ता मानते हो किन्तु तुमने नरसिंह मेहता का नहीं सुना? नरसिंह मेहता ने क्या कहा है? 'जहाँ लगी आत्मतत्त्व चिन्हयो नहीं त्यां लगी साधना सर्व झूठी।' यह तुम्हारे वैष्णव जूनागढ़ के नरसिंह मेहता ने कहा है। 'जहाँ लगी आत्मतत्त्व चिन्हयो नहीं...' आत्मा का ज्ञान और अनुभव नहीं किया तब तक साधना, यह भक्ति, पूजा, व्रत, दान सब बड़े शून्य हैं। एक के बिना के शून्य। यह अंक के शून्य गिने नहीं जाते। बेचारे सुनते थे। हमें कहाँ उनसे लेना था। पचास करोड़ रुपये।

यहाँ तो कहते हैं, गुणरूपी मणि। धर्मी के पास तो अन्तर गुणरूपी मणि होती है।

ज्ञान-दर्शन आनन्द आदि मणि अन्दर है। उस गुणरूपी मणियों के समुदाय से युक्त है। उस **गुणरूपी मणियों के समुदाय...** समुदाय अर्थात् गुण का पूरा भण्डार है। आत्मा अनन्त-अनन्त गुण का महासमुदाय, भण्डार है। आहाहा! परमेश्वर है, भगवन्त है, प्रभु है। आहाहा! उस **गुणरूपी मणियों के समुदाय से युक्त हैं और सर्व संकल्पों से मुक्त हैं,...** यहाँ तो उत्कृष्ट बात लेनी है न? धर्म की धर्मदशा होने पर **संकल्पों से मुक्त हैं,...** उसे प्रभु के स्मरण का संकल्प भी जिसे नहीं है। उससे मुक्त है और आत्मा के स्वरूप में मस्त हो गये हैं। आहाहा!

वे मुक्तिसुन्दरी के वल्लभ क्यों न होंगे? आहाहा! ऐसे जीव मुक्ति अर्थात् मोक्ष, परम आनन्द का लाभ ऐसी मुक्ति। परम अतीन्द्रिय का लाभ, ऐसी जो मुक्ति। ऐसे जीव उस मुक्ति के वल्लभ क्यों नहीं होंगे अर्थात् उन्हें मुक्ति क्यों नहीं होगी? आहाहा! मुक्ति होगी ही। आहाहा! पागल जैसा लगे। परन्तु हमने इतने वर्ष से यह सब सुना है, उसका क्या करना? शून्य लगाना। यह तो नया एकड़ा घोंटने की बात है। आहाहा! है?

मुक्तिसुन्दरी के वल्लभ क्यों न होंगे? ऐसे जीव अन्तर में... आहाहा! जिन्हें विषयसुख की विरक्तता, शुद्ध तत्त्व की लीनता, अन्तर के तप में जो मस्त, शास्त्र समुद्र में मत्त... आहाहा! **गुणरूपी मणियों के समुदाय से युक्त हैं और सर्व संकल्पों से मुक्त हैं,...** आहाहा! उन्हें मुक्ति मिलती है, उन्हें मुक्ति-मोक्ष होता है। दूसरे को मोक्ष नहीं होता। आहाहा! ये दो कलश हुए।

गाथा-८७

मोत्तूण सल्लभावं णिस्सल्ले जो दु साहु परिणमदि।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा।।८७।।

मुक्त्वा शल्यभावं निःशल्ये यस्तु साधुः परिणमति।
स प्रतिक्रमणमुच्यते प्रतिक्रमणमयो भवेद्यस्मात्।।८७।।

इह हि निःशल्यभावपरिणतमहातपोधन एव निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप इत्युक्तः।

निश्चयतो निःशल्यस्वरूपस्य परमात्मनस्तावद् व्यवहारनयबलेन कर्मपङ्कयुक्तत्वात् निदानमायामिथ्याशल्यत्रयं विद्यत इत्युपचारतः। अत एव शल्यत्रयं परित्यज्य परमनिःशल्य-स्वरूपे तिष्ठति यो हि परमयोगी स निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप इत्युच्यते, यस्मात् स्वरूपगत-वास्तवप्रतिक्रमणमस्त्येवेति।

कर शल्य का परित्याग मुनि निःशल्य जो वर्तन करे।
प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण कहते हैं उसे॥८७॥

अन्वयार्थ :—[यः तु साधुः] जो साधु [शल्यभावं] शल्यभाव [मुक्त्वा] छोड़कर [निःशल्ये] निःशल्यभाव से [परिणमति] परिणमित होता है, [सः] वह (साधु) [प्रतिक्रमणम्] प्रतिक्रमण [उच्यते] कहलाता है, [यस्मात्] कारण कि वह [प्रतिक्रमणमयः भवेत्] प्रतिक्रमणमय है।

टीका :—यहाँ निःशल्यभाव से परिणत महातपोधन को ही निश्चय-प्रतिक्रमणस्वरूप कहा है।

प्रथम तो, निश्चय से निःशल्यस्वरूप परमात्मा को व्यवहारनय के बल से कर्मपंकयुक्तपना होने के कारण (-व्यवहारनय से कर्मरूपी कीचड़ के साथ सम्बन्ध होने के कारण) 'उसे निदान, माया और मिथ्यात्वरूपी तीन शल्य वर्तते हैं' ऐसा

उपचार से कहा जाता है। ऐसा होने से ही तीन शल्यों का परित्याग करके जो परम योगी परम निःशल्य स्वरूप में रहता है, उसे निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप कहा जाता है, कारण कि उसे स्वरूपगत (-निज स्वरूप के साथ सम्बन्धवाला) वास्तविक प्रतिक्रमण है ही।

गाथा-८७ पर प्रवचन

८७ गाथा। ८७ गाथा।

मोत्तूण सल्लभावं णिस्सल्ले जो दु साहु परिणमदि।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा।।८७।।

यह प्रतिक्रमण की व्याख्या चलती है। शुभ-अशुभ राग से हटकर स्वरूप में रमे, उसे प्रतिक्रमण कहते हैं। प्रतिक्रम। प्रति अर्थात् विमुख होकर। चाहे तो दया, दान के, व्रत के परिणाम हों परन्तु वह तो बन्ध का कारण है। उनसे विमुख होकर स्वरूप में स्थिर हो, उसे प्रतिक्रमण कहा जाता है। यह शाम-सवेरे प्रतिक्रमण करे - णमो अरिहंताणं, णमो... मिच्छामि दुक्कडं, लो हो गया प्रतिक्रमण। अरे! भाई! एक समय का प्रतिक्रमण इसे मुक्ति दे, ऐसी दशा है। ऐसे प्रतिक्रमण के थोथा (ढोंग) तो अनन्त बार किये। आहाहा!

मोत्तूण सल्लभावं णिस्सल्ले जो दु साहु परिणमदि।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा।।८७।।

नीचे (हरिगीत)

कर शल्य का परित्याग मुनि निःशल्य जो वर्तन करे।
प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण कहते हैं उसे॥८७॥

टीका : यहाँ निःशल्यभाव से परिणत महातपोधन को ही निश्चयप्रतिक्रमण-स्वरूप कहा है। क्या कहते हैं? निःशल्य। मिथ्या शल्य, निदान शल्य, माया शल्य। तस्सउत्तरी में आती है। तस्सउत्तरी करणेणं प्रायश्चित्त करणेणं विशल्य करणेणं। इसे अर्थ की भी खबर नहीं होती। तस्सउत्तरी, तस्सउत्तरी, पहला पाठ। पहला णमो अरिहंताणं, दूसरा तीकखुतो, तीसरा इच्छामि पडिक्कमणा, चौथ सूत्री, विशल्यीकरण, शल्यरहित होने

के लिए। वह शल्य—मिथ्या शल्य, निदान शल्य, माया शल्य। आहाहा! इन तीन शल्यरहित निःशल्यभाव से परिणमे... आहाहा! ऐसे **महातपोधन को ही निश्चयप्रतिक्रमण...** अर्थात् निश्चयधर्म होता है। उसे निश्चयप्रतिक्रमण होता है।

विशेष कहा जायेगा.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)